International Research Journal of Human Resources and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor- 5.414, Volume 4, Issue 12, December 2017
Website- www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

भारतीय गाँवों का विकास : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. राहुल

पी.एच.डी. (समाजशास्त्र)

ग्रामीण विकास एक बहुआयामी अवधारणा है जिसका विश्लेषण दो दृष्टिकोणों के आधार पर किया गया है : संकुचित एवं व्यापक दृष्टिकोण। संकुचित दृष्टि से ग्रामीण विकास का अभिप्राय है विविध कार्यक्रमों, जैसे- कृषि, पशुपालन, ग्रामीण हस्तकला एवं उद्योग, ग्रामीण मूल संरचना में बदलाव, आदि के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों का विकास करना। वृहद दृष्टि से ग्रामीण विकास का अर्थ है ग्रामीण जनों के जीवन में गुणात्मक उन्नति हेतु सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, प्रौद्योगिक एवं संरचनात्मक परिवर्तन करना।

विश्व बैंक (1975) के अनुसार "ग्रामीण विकास एक विशिष्ट समूह- ग्रामीण निर्धनों के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन को उन्नत करने की एक रणनीति है।" **बसन्त देसाई** (1988) ने भी इसी रूप में ग्रामण विकास को परिभाषित करते हुए कहा कि, "ग्रामीण विकास एक अभिगम है जिसके द्वारा ग्रामीण जनसंख्या के जीवन की गुणवत्ता में उन्नयन हेतु क्षेत्रीय स्त्रोतों के बेहतर उपयोग एवं संरचनात्मक सुविधाओं के निर्माण के आधार पर उनका सामाजिक आर्थिक विकास किया जाता है एवं उनके नियोजन एवं आय के अवसरों को बढ़ाने के प्रयास किये जाते हैं।"

ग्रामीण विकास की उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि ग्रामीण विकास की रणनीति में राज्य की भूमिका को महत्त्वपूर्ण माना गया है। राज्य के हस्तक्षेप के वगैर ग्रामवासियों के निजी अथवा सामूहिक प्रयासों, स्वयंसेवी संगठनों के प्रयासों के आधार पर भी ग्रामीण जनजीवन को उन्नत करने के प्रयास होते रहे हैं, इन प्रयासों को ग्रामीण विकास की परिधि में शामिल किया जा सकता है। किन्तु नियोजित ग्रामीण विकास प्रारूप में राज्य की भूमिका महत्त्वपूर्ण मानी गयी है। इन परिभाषाओं के विश्लेषण से दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी उभरता है कि ग्रामीण विकास सिर्फ कृषि व्यवस्था एवं कृषि उत्पादन के साधन एवं सम्बन्धों में परिवर्तन तक ही सीमित नहीं है बल्कि ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, प्रौद्योगिक, संरचनात्मक सभी पहलुओं में विकास की प्रक्रियाएं ग्रामीण विकास की परिधि में शामिल हैं।

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

भारत में ग्रामीण विकास की रणनीति अलग-अलग अवस्थाओं में बदलती रही है। इसका कारण यह है कि ग्रामीण विकास के प्रति दृष्टिकोण बदलता रहा है। वस्तुत: ग्रामीण भारत को विकसित करने हेतु राज्य द्वारा अपनाये गये प्रमुख दृष्टिकोण निम्नलिखित है :

बहुउद्देशीय अभिगम की प्रमुख मान्यता यह थी कि गाँवों में लोगों के सामाजिक आर्थिक विकास हेतु यह आवश्यक है कि उनकी प्रवृत्तियों एवं व्यवहारों को बदलने का संगठित प्रयास किया जाय। इस दृष्टिकोण के आधार पर 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम की रणनीति अपनाई गयी जिसमें राज्य के सहयोग से लोगों के सामूहिक एवं बहुउद्देशीय प्रयास को शामिल करते हुए उनके भौतिक एंव मानव संसाधनों को विकसित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

ग्रामीण विकास के लिए प्रशासन का विकेन्द्रीकरण एवं लोगों की जनतांत्रिक सहभागिता का बढ़ाया जाना आवश्यक है। इस अभिगम के अनुरूप भारत में पंचायती राज संस्थाओं का विकास किया गया एवं क्षेत्रीय स्तर पर स्थानीय विकास कार्यक्रमों के निर्धारण एवं क्रियान्वयन के द्वारा ग्रामीण संरचना में परिवर्तन की रणनीति अपनाई गयी।

स्वतंत्रता के पश्चात् 1950 के आरम्भिक दशक में राज्य की रणनीति इन मान्यताओं पर आधारित थी। पाश्चात्य आर्थिक विशेषज्ञों ने यह मत दिया कि ग्रामीण विकास समेत सभी प्रकार का विकास आर्थिक प्रगति पर ही आधारित है इसलिए कुल राष्ट्रीय आय में वृद्धि करके ग्रामीण निर्धनता को दूर किया जा सकता है। एक दशक के अनुभवों के आधार पर उन्हें यह आभास हुआ कि उनकी रणनीति ग्रामीण निर्धनता को दूर करने में असफल रही है। तत्पश्चात् अर्थशास्त्रियों एवं समाजवैज्ञानिकों का दृष्टिकोण बदला। नये दृष्टिकोण की मान्यता यह थी कि आर्थिक प्रगति के अलावा शिक्षा को माध्यम बनाना होगा एवं ग्रामीण जनता को शिक्षित करके उनमें जागरूकता लानी होगी। इस दृष्टिकोण पर आधारित प्रयास का परिणाम यह निकला कि शिक्षित ग्रामीणों ने हल चलाने एवं कृषि कार्य करने से इन्कार कर दिया, उनकी अभिरुचि केवल श्वेत वसन कार्य (व्हाइट कलर वर्क) करने की बजाय गयी। तब 1960 में यह दृष्टिकोण पनपा कि लोगों की अभिवृत्तियों एवं उत्प्रेरकों में परिवर्तन किये बगैर ग्रामीण विकास सम्भव नहीं।

1960 के दशक के परिणाम के आधार पर यह अनुभव हुआ कि कुछ प्रकार की आर्थिक प्रगति ने सामाजिक न्याय में वृद्धि की है किन्तु अन्य अनेक प्रकार की प्रगति ने सामाजिक असमानता को बढ़ाया है। 1970 के दशक में योजनाओं एवं समाजवैज्ञानिकों का दृष्टिकोण बदला। इस नये दृष्टिकोण की मान्यता यह थी कि सामाजिक आर्थिक विकास के लाभ स्वत: रिसते हुए ग्रामीण निर्धनों तक पहुँचने की धारणा भ्रामक है।अत:

ग्रामीण विकास हेतु भूमिहीनों, लघु किसानों एवं कृषि पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित करना होगा।

ग्रामीण विकास की पूरी प्रक्रिया को जन सहभागी बनाना होगा। ग्रामीण विकास के लिए किये जाने वाले प्रशासन को न सिर्फ लोगों के लिए बल्कि लोगों के साथ मिलकर किये जाने वाले प्रशासन के रूप में परिवर्तित करना होगा। ग्रामीण जनों से आशय यह है कि वे लोग जो विकास की प्रक्रिया से अछूते रह गये हैं तथा जो विकास की प्रक्रिया के शिकार हुए हैं अथवा ठगे गये हैं। अभिगम पर आधारित रणनीति को क्रियान्वित करने की दिशा में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के विस्तार, विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियों के विकास, स्वयंसेवी संस्थाओं, संयुक्त समितियों, ग्राम पंचायतों, आदि को प्रोत्साहित करने के तमाम प्रयास किये गये।

ग्रामीण विसंगतियों में सुधार हेतु यह दृष्टिकोण विकसित हुआ कि विविध समूहों–भूमिहीन मजदूरों, ग्रामीण महिलाओं, ग्रामीण शिशुओं, छोटे किसानों, जनजातियों आदि को लक्ष्य बनाकर तदनुरूप विकास कार्यक्रम चलाने होंगे। इस दृष्टिकोण के आधार पर दो प्रकार के प्रयास किये गये : भूमि सुधार के माध्यम से भूमिहीनों को भू–स्वामित्व दिलाने के प्रयास किये गये, एवं मुर्गीपालन, पशुपालन तथा अन्य सहयोगी कार्यक्रमों के जरिये रोजगार के अवसर विकसित किये गये। ग्रामीण महिलाओं एवं शिशुओं, जनजातियों तथा अन्य लक्ष्य समूहों के लिए पृथक–पृथक कार्यक्रम चलाये गये।

ग्रामीण विकास के क्षेत्रीय अभिगम की मान्यता यह थी कि भारत के विशाल भौगोलिक क्षेत्रों में अनेक गुणात्मक भिन्नतायें हैं। पर्वत क्षेत्र, मैदानी क्षेत्र, रेगिस्तानी क्षेत्र, जनजातीय बहुल क्षेत्र आदि की समस्याएं समरूपीय नहीं है। अतः ग्रामीण विकास की रणनीति में क्षेत्र विशेष की समस्याओं को आधार बनाया जाना चाहिए।

1970 के दशक के अन्त तक ग्रामीण विकास की रणनीतियों एवं कार्यक्रमों की असफलता से सबक लेते हुए एक नया दृष्टिकोण विकसित हुआ जो समन्वित ग्रामीण विकास अधिगम के नाम से जाना जाता है। ग्रामीण विकास के परम्परागत दृष्टिकोण में मूलभूत दोष यह था कि वे ग्रामीण निर्धनों के विपरीत ग्रामीण धनिकों के पक्षधर थे तथा उनके कार्यक्रमों एवं क्रियान्वयन पद्धतियों में कई अन्य कमियाँ थी जिसके परिणामस्वरूप अपेक्षित परिणाम नहीं मिल सका। समन्वित ग्रामीण विकास अभिगम के अन्तर्गत जहाँ एक ओर ग्रामीण जनजीवन के विविध पहलुओं – आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य, प्रौद्योगिक को एक साथ समन्वित करके ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों के निर्धारण पर बल दिया गया वहीं दूसरी ओर विकास के लाभों के वितरण को महत्त्वपूर्ण माना गया।

भारत में स्वतंत्रता के उपरान्त राज्य के हस्तक्षेप के द्वारा राष्ट्र निर्माण एवं विकास हेतु कुछ सामान्य विकास कार्यक्रम तथा कुछ विशेष विकास कार्यक्रम अपनाये गये। सामान्य विकास कार्यक्रम के उदाहरण हैं – मूलभूत भौतिक संरचना के निर्माण, वृहद उद्योगों की स्थापना, आधुनिक कृषि, विद्युत एवं यातायात का विकास, इत्यादि। ग्रामीण विकास के सामान्य कार्यक्रम हैं : (अ) भूमि सुधार हेतु अधिनियम बनाना – जमींदारी उन्मूलन, हदबंदी, काश्तकारी, इत्यादि अधिनियम (ब) सिंचाई एवं विद्युत सुविधाओं, यातायात एवं संचार के साधनों का विकास (स) कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु उन्नत बीज, खाद, नये कृषि उपकरणों, रसायन आदि की व्यवस्था।

इन सामान्य कार्यक्रमों के अलावा ग्रामीण विकास हेतु राज्य द्वारा विविध अवधियों में विशेष विकास कार्यक्रम भी चलाये गये। आरम्भिक स्तर पर विशेष कार्यक्रमों के अन्तर्गत संरचनात्मक प्रशासनिक एवं सामाजिक संस्थाओं के विकास पर बल दिया गया, जैसे – सामुदायिक विकास प्रखण्ड, राष्ट्रीय विस्तार सेवा, पंचायती राज संस्था, शिक्षण संस्था एवं सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना, इत्यादि। राज्य की मान्यता यह थी कि इन सामान्य एवं विशेष कार्यक्रमों के द्वारा ग्रामीण विकास एवं ग्रामीण पुनर्निर्माण के लक्ष्यों की प्राप्ति होगी। किन्तु यह मान्यता व्यवहार में सफल नहीं हुई। परिणामस्वरूप अगले चरण में ग्रामीण निर्धनों के सामाजिक आर्थिक उन्नयन एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में विविध समूहों की सहभागिता बढ़ाने हेतु ग्रामीण विकास की नयी नीति निर्धारित की गयी। ए. आर. देसाई (1985) ने इस नयी नीति के अन्तर्गत किये गये प्रयासों को निम्न स्वरूप में विश्लेषित किया है : (क) भूमि सुधार एवं हदबंदी अधिनियमों एवं कार्यक्रमों का अधिक उत्साह के साथ क्रियान्वयन, (ख) भूमि सुधार में प्राप्त भूमि को भूमिहीनों में पुनर्वितरित करने का व्यवस्थित प्रयास, (ग) भूमि सम्बन्धी दस्तावेजों में पायी जाने वाली कमियों, जिनका लाभ ग्रामीण शक्तिशाली समूहों को मिलता रहा, को दू करना, (घ) निर्धन एवं मझौले किसानों को लाभकारी उत्पादन हेतु आर्थिक अनुदान देना (ङ) कृषि एवं अन्य प्रकार की सहयोगी समितियों के गठन पर विशेष ध्यान देना, (च) ग्रामीण नियोजन हेतु क्रैश योजना बनाना, (छ) लघु कृषक विकास एजेंसी के गठन, जिसके द्वारा गहन कृषि कार्य किया जा सके, (ज) सीमान्त कृषकों एवं भूमिहीन मजदूरों द्वारा उत्पादन में लाभकारी सहभागिता बढ़ाने हेतु कार्यक्रम चलाया जाना, (झ) अक्सर सूखा पीड़ित क्षेत्रों के लिए सूखा उन्मुख क्षेत्र कार्यक्रम क्रियान्वित करना, (ञ) गैर कृषि क्षेत्रों और – वानिकी, वृहद सिंचाई, मृदा एवं जल संरक्षण, सड़क निर्माण, गलियों एवं नालियों के निर्माण, आदि के लिए विशेष योजना बनाना, (ट) सूखाग्रस्त रेगिस्तानी, पर्वतीय एवं जनजाति बहुत क्षेत्रों के लिए विशेष क्षेत्रीय कार्यक्रम लागू करना, (ठ) शिक्षा एवं कल्याण

उन्मुख कार्यक्रम लागू किया जाना, (ड) विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को एक साथ मिलाते हुए समन्वित ग्रामीण विकास योजना का क्रियान्वयन।[1]

ग्रामीण विकास कार्यक्रम :

भारत में ग्रामीण विकास के विविध प्रयासों की सफलता एवं असफलता की समीक्षा करने पर यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समाज एवं विशेषकर ग्रामीण निर्धनों पर ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की बहुत सीमित सफलता प्राप्त हुई है।ग्रामीण विकास की नीतियों, कार्यक्रमों के निर्धारण एवं क्रियान्वयन में कमियों के कारण ग्रामीण रूपान्तरण की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण परिणाम नहीं दृष्टिगोचर होता। कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों के लक्ष्यों एवं उपलब्धियों के आधार पर उनका मूल्यांकन किया जा सकता है।

भारत में भूमि सुधार के कार्यक्रम में कुछ आधारभूत कमियाँ रही हैं, यथा – भूमि सुधार अधिनियमों में छिद्र पाया जाना, कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में शिथिलता, राजनीतिक इच्छा शक्ति का अभाव, सामान्य जनों की सक्रिय भागीदारी एवं संगठित प्रयास के अभाव, इत्यादि। इन कमियों के परिणामस्वरूप वांछित परिणाम नहीं प्राप्त हो सका।

भूमि हदबंदी (सीलिंग) अधिनियम के अन्तर्गत 30 दिसम्बर, 1999 तक पूरे भारत में कुल 73.74 लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि की घोषणा की गयी जिसमें से 65.11 लाख एकड़ भूमि राज्य द्वारा अवप्त की जा सकी। इस अवप्त भूमि में से 53.05 लाख एकड़ भूमि 55.37 लाख भूमिहीनों में वितरित की गयी जिसमें 36 प्रतिशत अनुसूचित जाति एवं 14 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति के लाभार्थी हैं। सीलिंग अधिनियम में अवप्त भूमि के अतिरिक्त 147.44 लाख सरकारी परती/बंजर भूमि भी ग्रामीण भूमिहीनों को वितरित की गयी। काश्तकारी अधिनियम के अन्तर्गत 124.22 लाख काश्तकारों का 156.31 लाख एकड़ भूमि पर अधिकार सुरक्षित किया गया। भूमि सुधार के यह आँकड़े आंशिक सफलता को प्रदर्शित करते हैं, किन्तु इन आँकड़ों में भी घोषित अतिरिक्त भूमि एवं अवप्त भूमि तथा वितरित भूमि में अन्तराल स्पष्ट परिलक्षित होता है। इन वितरित भूमि की गुणवत्ता उत्पादकता की दृष्टि से सबसे निम्न किस्म की है तथा वितरित भूमि पर भूमिहीनों का स्वामित्व भी प्राय: विवादों में फँसा है। इसके बावजूद 11 राज्यों से प्राप्त रिपोर्ट जनजातियों के भूमिस्वामित्व से पृथक किये जाने के 4.65 लाख मुकदमें को दर्शाते हैं जिसमें कुल 9.18 लाख एकड़ भूमि शामिल है। इनमें से 2.02 लाख मुकदमों का फैसला जनजातियों के पक्ष में हुआ है फिर भी 5.31 लाख एकड़ भूमि में से केवल 4.61 लाख एकड़ भूमि ही जनजातियों को वापस मिल सकी

1.

है। इसी प्रकार कृषि भूमि के चकबन्दी कार्यक्रम में अब तक पूरे भारत में महज 1583. 45 लाख एकड़ भूमि की चकबन्दी की गयी है। यह समस्त तथ्य भारत में भूमि सुधार कार्यक्रम की आंशिक सफलता को प्रदर्शित करते हैं। भूमि सुधार के तमाम अधिनियमों एवं कार्यक्रमों के बावजूद भू-स्वामित्व के आधार पर असमानता, काश्तकारी की शोषणपूर्ण प्रणाली का स्वरूप बना हुआ है।

पंचायती राज की स्थापना के माध्यम से राज्य की जनतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया संरचनात्मक कमियों के कारण प्रायः आंशिक सफलता की प्राप्त कर सकी। अधिकांश समय तक पंचायती राज संस्थाएँ मृतप्रायः एवं विलुप्त ही पाई गयीं, उनका पूर्ण विकसित स्वरूप कम ही परिलक्षित होता है।

पंचायतों की भूमिका का आंकलन करते हुए अशोक मेहता समिति ने यह रिपोर्ट दिया कि पंचायती राज के सम्बन्ध में यह सोचना कि "ईश्वर फेल हो गया", उचित नहीं। पंचायती राज की अनेक उपलब्धियाँ हैं - इसके माध्यम से भारतीय भूमि में जनतंत्र का बीजारोपण हुआ, आम जनता पहले से अधिक अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुई, नौकरशाही, अभिजन एवं सामान्यजन के सहसम्बन्ध की खाई घटी, नये नेतृत्व का अभ्युदय हुआ तथा ग्रामीणजनों के विकास की मनोवृत्ति विकसित करने में सहायक हुई। किन्तु दूसरी ओर इस तथ्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि पंचायत संस्थाओं की डांवाडोल स्थिति के कारण ग्रामीण सामान्यजनोंा एवं प्रशासकों के सम्बन्ध में रिक्तता अथवा शून्यता आई एवं इस रिक्तता को ग्रामीण बिचौलियों के द्वारा भरा गया। परिणामस्वरूप ग्रामीण दुर्बल समूहों की बजाय बिचौलिये ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अधिकांश लाभार्थी बन गये।

भारत सरकार ने पंचायती राज को एक बार पुनः सशक्त संस्था बनाने के प्रयास में 1992 में संविधान का 73वाँ संशोधन किाय है। इस संशोधन के जरिये पंचायतों में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं ग्रामीण महिला के 33 प्रतिशत प्रतिनिधित्व को सुरक्षित किया गया, ग्राम पंचायतों को क्षेत्रीय विकास की योजना के निर्धारण एवं क्रियान्वयन के अधिकार प्रदान किये गये तथा आर्थिक स्वायत्तता प्रदान करते हुए उनको आर्थिक रूप से सशक्त बनाया गया है। संवैधानिक संशोधन के उपरान्त कुछ राज्यों को छोड़कर अधिकांश राज्यों में पंचायत के चुनाव हो चुके हैं। परिणामस्वरूप भारत में ग्राम स्तर पर 2,27,698, प्रखण्ड स्तर पर 5906 एवं जिला स्तर पर 474 पंचायतें गठित हो गयी है, जिनमें सभी स्तरों को मिलाकर कुल 34 लाख पंचायतकर्मी प्रतिनिधियों का चयन किया गया है। इसके अतिरिक्त पंचायतों के अनुसूचित जनजातीय क्षेत्रों में विस्तार अधिनियम को 24 दिसम्बर, 1996 से क्रियान्वित कर दिया गया। इस अधिनियम के परिप्रेक्ष्य में जनजातीय क्षेत्रों में पंचायतों की सक्रियता बढ़ी है। पंचायती राज व्यवस्था के

सशक्तिकरणके ये समस्त प्रयास सराहनीय हैं। किन्तु व्यावहारिक स्तर पर अभी भी कई समस्याएँ हैं, जैसे – पंचायत प्रतिनिधियों में प्रशिक्षण का अभाव, सामूहिक हितों के प्रति समर्पण में कमी, महिला प्रतिनिधियों के पर्याय के रूप में उनके परिवार के गैर प्रतिनिधि पुरुषों की सक्रियता, पारदर्शिता का अभाव, इत्यादि। भारत में पंचायती राज की सफलता इन समस्याओं के सम्यक निराकरण पर निर्भर करेगी।

समाज वैज्ञानिक दृष्टि से समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन में दो प्रमुख समस्याएँ परिलक्षित होती हैं : (अ) यह आश्वासन कि ग्रामीण निर्धनों के लिए आवंटित स्त्रोत एवं संसाधन गैर निर्धन समूहों को न लाभान्वित कर रहे हों, तथा (ब) यह आश्वासन कि निर्धन समूहों को प्रदत्त स्त्रोतों का गैर उत्पादक की बजाय उत्पादक प्रक्रिया में उपयोग किया जाय ताकि आय के स्त्रोतों को स्थायी रूप से जारी रखा जा सके।

ग्रामीण नियोजन (रोजगार) से जुड़े प्रयास का प्रादुर्भाव राष्ट्रीय ग्रामीण नियोजन कार्यक्रम, 1980 में हुआ तथा 1983 में ग्रामीण मजदूर नियेाजन (गारंटी) कार्यक्रम चलाया गया। पहले कार्यक्रम के अन्तर्गत छठी पंचवर्षीय योजना में 1843.78 करोड़ रुपया व्यय किया गया तथा 1774.37 मिलियन से अधिक श्रम दिवस के अवसर श्रृजित किया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना के प्रथम चार वर्षों में 1308.47 मिलियन श्रम दिवस का श्रृजन हुआ। दूसरे कार्यक्रम के अन्तर्गत सातवीं पंचवर्षीय योजना में 7786.38 करोड़ रुपया व्यय करके 3492.6 मिलियन श्रम दिवस का श्रजन किया गया। इस कार्यक्रम के तहत 1989 तक कुल 14, 172 लाख श्रम दिवस रोजगार उपलब्ध किया गया।

1 अप्रैल, 1989 से इन दोनों रोजगार कार्यक्रमों को एक में मिलाते हुए एक नया कार्यक्रम 'जवाहर रोजगार योजना' क्रियान्वित किया गया। 1989 से 1998 तक की अवधि में जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत 70003.32 लाख श्रम दिवस के अवसर श्रृजित किये गये। ग्रामीण नियोजन मंत्रालय के मूल्यांकन में यह निष्कर्ष निकला कि जवाहर रोजगार कार्यक्रम का 82.16 प्रतिशत व्यय सामुदायिक विकास कार्यों, प्रमुखत: ग्रामीण सड़क निर्माण कार्य में किया गया।

2 अक्तूबर, 1993 से ग्रामीण क्षेत्रों के 261 जिलान्तर्गत 1778 प्रखण्ड़ों में एक नया कार्यक्रम 'रोजगार आश्वासन योजना' क्रियान्वित किया गया। यह योजना सूखा उन्मुख, मरुस्थल, पहाड़ी एवं जनजातीय प्रखण्ड़ों में आरम्भिक स्तर पर लागू किया गया। आज यह योजना पूरे देश के 5448 ग्रामीण प्रखण्ड़ों में लागू है। 1993 से 1998 की अवधि मे।इस योजना के अन्तर्गत 8205.20 करोड़ रुपये व्यय करके 15,447.33 लाख श्रम दिवस रोजगार के अवसर श्रृजित किया गया। विभिन्न राज्यों में नवम्बर, 1998 तक 4.12

करोड़ ग्रामीण इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अपना पंजीकरण करा चुके थे। इस योजना के अंतर्गत प्रत्येक निर्धन परिवार से अधिकतम दो सदस्यों को एक वर्ष में 100 दिन के रोजगार का आश्वासन दिया गया है, जिसके लिए उन्हें ग्राम पंचायत में अपना पंजीकरण कराने की आवश्यकता है।

भारत सरकार ने ग्रामीण निर्धन अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, मुक्त किये बंधुआ मजदूरों के लिए 1985-86 में इन्दिरा आवास योजना के माध्यम से मुफ्त में आवास प्रदान करने का कार्यक्रम शुरू किया है। 1993-94 में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत गैर अनुसूचित जाति गैर अनुसूचित जनजाति के ग्रामीण निर्धनों, सेना में शहीद परिवारों एवं विकलांग निर्धन व्यक्तियों को भी शामिल किया गया है। यह कार्यक्रम 80 प्रतिशत केन्द्रीय एवं 20 प्रतिशत प्रान्तीय आर्थिक अनुदानों के आधार पर क्रियान्वित है, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक आवास के लिए 28,000 रुपये (मैदानी क्षेत्रों में) एवं 22,000 रुपये (पहाड़ी क्षेत्रों में) आवंटित किये जाते हैं। आवासों में शुलभ शौचालय के निर्माण की भी योजना है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक आवंटित आवासी को एक आधुनिक धुआँरहित चूल्हा भी प्रदान करने का प्रयास जारी है।

इन्दिरा आवास योजना ग्रामीण विकास का एक लोकप्रिय कार्यक्रम हैं, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक वर्ष लक्ष्य से अधिक आवासों का निर्माण किया जा रहा है, 1985 से 1999 की अवधि तक कुल 48,43,178 आवासों का निर्माण किया गया है। भारत सरकार ने अपनी नयी राष्ट्रीय आवास नीति 1998 में सबको आवास प्रदान करने का लक्ष्य निर्धारित किया है एवं तदनुरूप 13 लाख अतिरिक्त आवासों के निर्माण की क्रिया योजना बनाई है। इसके अतिरिक्त 103.1 लाख जर्जर कच्चे आवासों की मरम्मत अथवा उन्हें पक्के आवासों के रूप में बदलने हेतु इन्दिरा आवास के मद की 20 प्रतिशत राशि के प्रति आवास 10,000 रुपये की आर्थिक सहायता का प्रावधान भी बनाया गया है। नयी आवास नीति में गरीबी रेखा से ऊपर किन्तु 32,000 तक वार्षिक आय वाले परिवारों के लिए भी इन्दिरा आवास योजना की निर्धारित राशि का 50 प्रतिशत आर्थिक सहायता के रूप में देने का प्रस्ताव है। इस कार्यक्रम से ग्रामीण निर्धनों के आवास की समस्या आंशिक रूप से कम हुई है, किन्तु 1991 की जनगणना के अनुसार 13.72 मिलियन तथा सन् 2002 तक अतिरिक्त 10.75 मिलियन आवासों की आवश्यकता है ताकि प्रतिवर्ष 0.89 मिलियन बेघर की बढ़ती हुई आबादी की आवश्यकता को पूरा किया जा सके।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारत में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि, भूमि सुधार, आर्थिक विकास, ग्रामीण औद्योगिकरण, ग्रामीण नियोजन, शिक्षा एवं स्वास्थ्य, सामाजिक सहायता, मानव संसाधन, महिला सशक्तिकरण,

जल एवं पर्यावरण संवर्धन, ग्रामीण प्रौद्योगिकी, जनतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं अन्य अनेक क्षेत्रों में बहुआयामी प्रयास किये जा रहे हैं। इन विविध कार्यक्रमों के मूल्याँकन से प्राप्त तथ्य यह संकेत करते हैं कि सत्व एवं प्रगति दोनों सृष्टि से भारत में ग्रामीण विकास की उपलब्धियाँ संतोषजनक नहीं कही जा सकती। इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इन कार्यक्रमों से ग्रामीण जनजीवन एंव ग्रामीण सामाजिक आर्थिक संरचना कुछ सीमा तक परिवर्तित हुआ है। किन्तु ग्रामीण वस्तुस्थिति यह प्रदर्शित करती है कि ग्रामीण विकास प्रक्रिया में राज्य के हस्तक्षेप ने ग्रामीण निर्धन समूहों को आंशिक एवं अल्पकालिन सहायता ही प्रदान की है। दीर्घकालिन परिणाम उत्पन्न करने में ये कार्यक्रम असफल सिद्ध हुए हैं। मूल प्रश्न यह है कि ग्रामीण विकास के और अधिक प्रयास क्यों नहीं किये गये? राज्य की ग्रामीण विकास नीति ग्रामीण समाज विशेषकर ग्रामीण दुर्बल समूहों के हितों के प्रति कितनी समर्पित है?

संदर्भ सूची :

1. Desai,A. R. (1985),A New Policy for Rural Development in southAnd South EastAsia, Bombay : G. C. Shah Memorial Trust Publication, p. 112.
2. Desai, Vasant (1988) Rural development in SouthAnd South eastAsia, Bombay G.C. Shah Memorial Trust purlications, p. 48.
3. Government of India, (1979), Report of the Evaluation Study of Small Farmers, Marginal FarmersAndAgriucltural Labour Project, Planning Commission.
4. Kothari, Rajani (1974), "INdiaAnd theAlternative Framework for Rural Development", Development Dialogue, Uppasaia: D.H.F.
5. Maheshwari, S.R. (1985) Rural Development in India :A Public PoliceApproach, New Delhi : Sage.
6. Prasad, Kamla (1986), "Land ReformsAndAlleviation of Rural Poverty," Kurukshetra, Vol. XXXV, No. 1, October.
7. Singh, Mahinder (1992), Rural Development in India : Current Perspectives, New Delhi : Intellectual Publishing House.
8. World Bank (1975), Rural Development Sector Policy Paper, Washington.